

राजकीय शैक्षिक कार्यक्रमों में सरकारीकरण बनाम समाजीकरण

लोकजुम्बिश के निहितार्थ

राजस्थान में प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण के लिए 1992 में राज्य सरकार द्वारा एक स्वायत्तशासी निकाय लोक जुम्बिश परिषद की स्थापना की गयी। प्राथमिक शिक्षा को से अपेक्षाकृत पिछड़े दूर दराज के अंचलों में विपन्न तबकों तक व्यापक स्तर पर सुलभ कराने का यह एक अभिनव प्रयोग रहा। लोक जुम्बिश परिषद की विकास खंड स्तर पर संरचना इस प्रकार विकेन्द्रित रही कि इसमें महिलाएं व वंचित वर्ग को निर्णय प्रक्रिया सहित प्रबंधन में शामिल किया जा सके। बालिका शिक्षा और कामकाजी बच्चों के लिए लोकजुम्बिश ने विशिष्ट उपक्रम किये। शिक्षा की गुणवत्ता के प्रति एक सचेत दृष्टि रखी गयी और शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों, संस्थाओं और शिक्षाविदों को इसमें सक्रिय रूप से जोड़ा गया। मई 98 में पोखरण विस्फोट के बाद लोक जुम्बिश परिषद को सीडा (स्वीडन इंटरनेशनल डेवलपमेंट एजेंसी) ने वित्तीय मदद रोक दी। लेकिन 1994 के शुरुआती महीनों में नयी सरकार ने लोक जुम्बिश परिषद की मूल संकल्पना पर पुनर्विचार व इसके कार्य-कलापों की जांच पड़ताल की बातें करना शुरू किया तो लोक जुम्बिश अभियान का गतिरोध और बढ़ गया। ऐसी स्थिति में परिषद से संबद्ध व्यक्तियों में संशय और प्रश्नाकुलता स्वाभाविक थी। इस पृष्ठभूमि में 28-29 अगस्त, 1999 को जयपुर में दिगन्तर की पहल पर एक शैक्षिक संवाद आयोजित किया गया जिसका विषय था : “राजकीय शैक्षिक कार्यक्रमों में सरकारीकरण बनाम समाजीकरण : लोकजुम्बिश अनुभव के निहितार्थ”। व्यापक परिप्रेक्ष्य में हुए इस संवाद की पैनल चर्चा में जिन व्यक्तियों ने भाग लिया यहां उनके वक्तव्यों की अविकल प्रस्तुति की जा रही है। इन संभागियों में विनोद रैना एकलव्य, भोपाल, शारदा जैन, संधान शोध केन्द्र, जयपुर, अजित कुमार सिंह, निदेशक लोक जुम्बिश; योगेन्द्र, बोध शिक्षा समिति, जयपुर और प्रो. विजय शंकर व्यास, विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर से सम्बद्ध हैं। मध्य प्रदेश शासन के सलाहकार शरद चन्द्र बेहार और शिक्षाविद् अनिल सद्गोपाल के वक्तव्य हम टेप रिकार्डर की खराबी के कारण नहीं दे पा रहे हैं।

भूमिका की भूमिका

□ रोहित धनकर

आखिर ये हंगामा क्यों है ? हाल ही में राजस्थान के एक दैनिक का सवाल था। पत्र में कहा गया था कि सरकार कह तो रही है कि लोक जुम्बिश चालू रहेगी। फिर आखिर यह हंगामा क्यों है? पत्र वह सब भूल गया जो सरकार के जिम्मेदार व्यक्ति जब तब कहते रहे हैं। लोक जुम्बिश पर सरकार की बहुत टिप्पणियां हुई हैं। उनमें परियोजना के अन्तर्गत चलने वाले स्कूलों में, केन्द्रों में, दी जाने वाली शिक्षा के बारे में ऐसी टिप्पणियां भी शामिल हैं कि “इस प्रकार की विलासिता की शिक्षा मैंने पहली बार देखी है।” दूसरी प्रकार की बातें भी हैं कि बहुत अच्छा काम चल रहा था या चल रहा है। इन सारी चीजों में, विभिन्न मतों के इस प्रोजेक्शन में, आज की बैठक कहां आती है? निश्चित रूप से यह

बैठक इस पृष्ठभूमि में है लेकिन यह व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करने के लिए बुलायी गयी है। यह व्यापकता इसमें कहां से आती है ? मैं उस पर कुछ कहने में थोड़ा समय लगाऊंगा।

एक बात और, मुझे लगता है आरंभ में ही कहनी चाहिए। लोक जुम्बिश के इस अनुभव में से जो व्यापक मुद्दे उभरते हैं, उनको ठीक से समझने के लिए, विश्लेषित करने के लिए, जिस प्रकार का ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीति परिप्रेक्ष्य और पृष्ठभूमि चाहिए, इन विषयों को विश्लेषित करने के लिए जो अवधारणात्मक उपकरण चाहिए, वे शायद हमारे पास बहुत उत्तम प्रकार के नहीं हैं।

इस गोष्ठी का एक उद्देश्य यह है कि ऐसे लोग विचार-विमर्श

में शामिल हों जिनके ज्ञान का आधार ज्यादा व्यापक और गहरा है। जिनके पास विश्लेषण के औजार ज्यादा तीखे हैं, जिनसे इन मुद्दों के विश्लेषण में मदद मिले। ऐसे बहुत ज्यादा लोग यहां नहीं हैं, इसलिए सोचा गया कि बाहर के लोगों को भी जोड़ें। यह बात मैं शुरु में इसलिए कह रहा हूँ कि जो बात मैं कहूँगा, वह शायद शार्पली डिफाइन न हो। क्योंकि विश्लेषण अभी चल रहा है।

इस बैरक के उद्देश्यों पर आने से पहले मैं एक बात और कहना चाहूँगा कि इस बैठक की अवधारणा में ही यह निहित है कि इसके आयोजक और आयोजन के संदर्भ में जो लोग विचार करते रहे हैं, वे जो भी उद्देश्य देख रहे हैं, वे बात को आरंभ करने भर के लिए हैं....

यदि हम लोगों को इस पूरी चर्चा में यह लगता है कि परिस्थिति को किसी दूसरी तरह से देखा जाना चाहिये। यदि इसे किसी दूसरी तरह से इंटरप्रेट किया जाना चाहिये तो उसको हम इस बैठक में खुला मान कर चलें। अभी तक मैं ने जो बात कही है वह एक प्रकार से भूमिका की भूमिका है।

उद्देश्यों में कुछ तो इस प्रकार की बातें हैं जो यहां बैठे ज्यादातर लोग जानते हैं और उनको दोहराना शायद बहुत उपयोगी न हो। लेकिन आज की बैठक में मैं जानबूझ कर और कुछ समय लेकर उनको दोहराऊँगा। मेरी बात को गलत समझे जाने से बचने के लिए मुझे एक तरीका यही लग रहा है कि जिन विचारों को लेकर इस बैठक की धारणा बनी है, उनको दोहराव के भय के बावजूद एक बार में कह दूँ, जिससे सही परिप्रेक्ष्य में उसको देखा जा सके।

एक तरीका तो इसको देखने का यह हो सकता है, बाकी और भी इंटरप्रेशन हो सकते हैं। मुझे ऐसा लगता है कि जहां तक राज्य सत्ता या समाज को नियंत्रित या संचालित करने वाली किसी भी संस्था का सवाल है, वह शायद शिक्षा को तीन मुख्य रूपों में देखती है। एक, सीधा-सीधा लोगों को शासित करने के काबिल बनाने के उपकरण के रूप में है। जो भी सत्ता समाज को नियंत्रित करना चाहती है चाहे वह राज्य सत्ता हो या धार्मिक सत्ता हो, उन दोनों में एक बात समान होती है। यह कि शिक्षा के माध्यम से सत्ता लोगों को गवर्नेबिल या शासित किये जाने के काबिल बनाने की कोशिश करती है। बहुत बार ऐसा लगता है कि ऊपर से नैतिक लगने वाली चीजों के मूल में भी आप यदि गहराई से विश्लेषण करें तो पायेंगे कि उसका मुख्य उद्देश्य उन नैतिक मूल्यों को खूब अच्छी तरह से पढ़ाने-लिखाने या स्थापित करने का होता है। मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि सारे नैतिक मूल्य ऐसे ही होते हैं, मैं यह कह रहा हूँ कि नैतिक मूल्यों का उपयोग भी इस तरह किया जा सकता है, किया जाता है।

राज्य सत्ता को जब यह भान होता है कि उसकी जनता के प्रति कुछ जिम्मेदारियां भी होती हैं, इन जिम्मेदारियों से यहां मेरा आशय एक खास स्टेज पर है। ये जिम्मेदारियां कुछ इस प्रकार की हो सकती हैं जैसी पुराने जमाने में राजा की प्रजा के प्रति होती थी। इस स्तर पर हम राज्य को बिनेबलेंट (शुभचिंतक) शासक के रूप में देख सकते हैं। पर वास्तव में राज्य तब भी बिनेबलेंट होता है। या नहीं, मुझे शक है। यह वास्तव में एक पैटर्नलिस्टिक भाव है जिसमें राज्य समझता है प्रजाजन उसके बच्चे हैं। अतः उनके प्रति उसकी कुछ जिम्मेदारियां हैं। लेकिन उस जिम्मेदारी में कहीं यह भान नहीं होता कि इन लोगों को कुछ अधिकार भी हैं, ये राजा से कुछ मांग भी सकते हैं। सवाल अधिकार का नहीं है, सवाल सिर्फ यह है कि राजा या राज्य दे सकता है, और देना उसका कर्तव्य है। लेकिन जब राज्य को यह भान होता है कि लोग मांग भी सकते हैं तब राज्य में कहीं न कहीं एक बात यह आती है कि लोग मांग सकते हैं तो इन्हें उत्पादक भी होना चाहिये। तो शिक्षा का सत्ता जो उपयोग करती है उसमें दूसरी चीज भी जुड़ जाती है कि एक तो उन्हें गवर्नेबिल बनाओ और दूसरे वह उत्पादक हों।

आजकल बाजार का दौर शुरू हो गया है तो अकेले उत्पादन का क्या होगा? उसका उपभोक्ता भी होना चाहिये। मुझे ऐसा लगता है कि राज्य सत्ता मोटे तौर पर शिक्षा को गवर्नेबिल, उत्पादक और उपभोक्ता किस्म के लोग तैयार करने के लिए उपयोग में लेने की कोशिश करती रहती है। मेरी यह एक बात थोड़ी अटपटी लग सकती है कि मैं इस प्रकार की जनरल बात से इस गोष्ठी में क्या कहना चाहता हूँ? पर आगे हम जो बात करेंगे, जिस समस्या पर बात करेंगे, उससे यह जुड़ती है।

इससे हटकर जब हम शिक्षा की बात करते हैं तो बहुधा व्यक्तित्व के विकास की बात करते हैं। और यह बात कई अंदाजों में की जाती है, लेकिन एक अंदाज जिसमें यह अपने आरंभिक काल में जब शुरू होती है तो उसमें यह पूरी तरह व्यक्ति पर केन्द्रित होती है और समाज लगभग अदृश्य होता है।

फिर कहीं न कहीं एक स्टेज पर आकर अधिकारों की बात भी होती है कि शिक्षा ऐसी हो जो लोगों को अधिकारों के बारे में सचेत करे। तो ये अधिकार किसके, जो शिक्षित हो रहा है उसके या उससे व्यापक भी कोई चीज हो सकती है। मुझे ऐसा लगता है कि आज के समाज में, खासकर लोकतांत्रिक समाज में शिक्षा की बात करेंगे तो ये सारी चीजें उपयोगी हो सकती हैं, काम की हो सकती हैं और शिक्षा का हम जो भी ढांचा या मॉडल बनायेंगे, उसमें इनकी जगह हो सकती है। लेकिन ये किन्हीं चीजों को छोड़ देती हैं, कुछ अधूरा रह जाता है।

लोकतंत्र में एक प्रकार की सामाजिक चेतना भी शिक्षा में आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से सिर्फ अपने अधिकारों के प्रति ही जागरूक हो। वह एक प्रकार की प्रतिबद्धता के साथ विकास करे। जो व्यापक विमर्श समाज में चल रहा है या व्यापक निर्णय समाज में लिए जाते हैं उनमें से प्रत्येक के बारे में सरोकार महसूस करे। ऐसे प्रत्येक निर्णय से सरोकार हो जिसका असर उस पर या व्यापक जन पर होने वाला है। वह इस सबके बारे में खुद को चिंतित महसूस करे। और इन सब चीजों के विश्लेषण में उसे समर्थ बनाने वाले मानसिक उपकरण शिक्षा के माध्यम से प्राप्त हों।

लेकिन शिक्षा को यदि हम इस अंदाज में देखें और उसकी तुलना आज के क्लास रूम से करें तो कहीं बहुत स्पष्ट रूप से ऐसा लगता है कि हमारे क्लास रूम में चलने वाली बहुत सारी प्रक्रियाएं उन तीन चीजों तक सीमित रह जाती हैं जिनका मैंने आरंभ में जिक्र किया था; आराम से शासित किये जा सकने वाले, उत्पादक और उपभोक्ता किस्म के लोग। मैं चूंकि शिक्षा को एक शिक्षक की नजर से देख रहा हूं तो मुझे शिक्षक के नाते यही लग रहा है।

प्रत्येक व्यक्ति जनतांत्रिक समाज में अपनी जगह को समझ सके और अपनी भूमिका के निर्वहन को तैयार हो तो उसके लिए शिक्षा की शुरुआत कहां से हो सकती है? इस प्रकार की शिक्षा की शुरुआत कहीं ऊपर से नहीं होकर हजारों लाखों क्लास रूम में, हजारों लाखों शिक्षकों के माध्यम से करनी पड़ेगी। इसका मतलब स्कूलों में कुछ ऐसा करना चाहिए। आज की जो शिक्षण-विधि है, वह निश्चित रूप से विद्यार्थियों को इसके काबिल बनाने के विरुद्ध है, वह उनको अधिक आज्ञाकारी और कुछ ही चीजों में सक्षम बनाने की तरफ है। अब इस सारी चीज में, यदि हजारों लाखों कक्षाओं में दूसरी प्रकार की शिक्षण विधि शुरू करनी है जो शिक्षा को एक व्यापक अर्थ दे और जो जनतंत्र में उपयुक्त हो, तो यह काम कौन कर सकता है? दो चार गैर सरकारी संगठन या कोई व्यक्ति जिसने इस पर पढ़ा-लिखा है, बहुत सोचा है बहुत समझदार है.. उनसे तो यह नहीं होगा।

यह तभी हो सकता है जब इसमें व्यापक स्तर पर सरकार शामिल हो। सरकार के माध्यम से जो कार्यक्रम चल रहे हैं उनमें इन चीजों के प्रति ध्यान दिया जाये, इन्हें महत्वपूर्ण समझा जाये। इसमें मुझे ऐसा लग रहा है कि शिक्षण-विधि में परिवर्तन अपने आप में मूल चीज होने के बावजूद व्यापक स्तर पर एकदम से कर पाना मुश्किल होगा। शायद पहले शिक्षा के कार्यक्रमों को चलाया कैसे जाये, इस पर विचार करना होगा। शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम में महत्वपूर्ण निर्णय सिर्फ राज्य सरकार से सीधे-सीधे संबंधित और

नौकरशाही से जुड़े हुए लोगों या विभागीय कर्मियों तक ही सीमित न हों, उससे बाहर निकला जाये और इनमें लोगों की भागीदारी बने, व्यापक जन भागीदारी हो, इसकी व्यवस्था करनी होगी। इसमें एक तो वे लोग शामिल हों जिनके बच्चे पढ़ रहे हैं, दूसरे वे लोग जो पढ़ा रहे हैं यानी शिक्षक, उन्हें सिर्फ इस ढंग से नहीं देखा जाना चाहिए कि उनसे तो पढ़वाना है। सिर्फ काम करवाना है। इसमें ऐसे शिक्षाविद् भी शामिल हों जो शिक्षा के काम के साथ व्यापक स्तर पर समाज से जुड़े हुए हैं और सारी चीज के बारे में एक दृष्टि रखते हैं। कुल मिला कर ऐसा लग रहा है कि कहीं कहीं एक प्रकार के डी ब्यूरोक्रेटाइजेशन (गैर नौकरशाहीकरण) की जरूरत है, शिक्षा के जो कार्यक्रम चल रहे हैं, वे पूरी तरह सरकार केन्द्रित नहीं हों। उनमें जगह बनाने की, उन्हें खोलने की जरूरत है ताकि इसमें विभिन्न प्रकार के लोगों की भागीदारी हो सके। मैं फिर से दुहरा रहा हूं कि इसमें गांव से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक शिक्षा में काम करने वाले, समाज में लोगों को सक्षम बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के काम करने वाले लोगों की भागीदारी हो सके।

पहले से चल रहे कार्यक्रम में यदि यह बात हो, कक्षाओं में शिक्षण-विधि के स्तर पर व्यापक रूप से बदलाव लाने में हम सक्षम हो सकें, बच्चों तक जनतांत्रिकरण के लिए शिक्षा की बात पहुंचा सकें, इसके लिए एक शिक्षक के नाते जो बात मुझे आवश्यक लग रही है, वह यह है कि कार्यक्रम के पहले या साथ साथ कहीं न कहीं इस प्रकार के ढांचागत परिवर्तन की जरूरत है जो व्यापक स्तर पर हो। लेकिन मौटे तौर पर तो देखने में यह आता है कि अधिकतर सरकारी कार्यक्रमों में या तो इस प्रकार की भागीदारी होती नहीं है और यदि होती है तो जिन लोगों से राय ली जाती है उन्हें एक कामगार की नजर से अधिक देखा जाता है। कि जिस चीज पर उनसे राय चाहिए, ले लेंगे; जो काम उनसे करवाना होगा, करवा लेंगे। वे क्या काम करेंगे और कैसे करेंगे, ये हम बाद में सोचेंगे। तो वे पार्टनर्स नहीं हैं, वे मजदूर हैं। कि यह आदमी है, यह मास्टरी के बारे में काफी जानता है, यह ट्रेनिंग या यह किताब के बारे में जानता है, इनसे ये काम करा लेते हैं। शिक्षा का प्रयोजन क्या है? शिक्षा की क्या अवधारणा है, शिक्षा का क्या विजन है, वह पहले ही कहीं से तय कर लिया है किन्हीं लोगों ने, जो तय कर सकते थे। अब इसमें इनपुट के लिए वे कुछ लोगों को इस तरह से ले लेंगे कि उनसे कुछ चीजें करा लेंगे। सरकारी कामों में ज्यादातर भागीदारी इस प्रकृति की होती है, लोगों को पार्टनर के स्तर पर जोड़ने की कोशिश कम होती है।

अभी शिक्षा के काम में सलाहकारिता (कंसल्टेन्सी) की एक नई लहर चली है। इसमें भागीदारी का, पार्टनरशिप का सवाल नहीं है। यदि शिक्षाक्रम बनाना है तो बाजार में देखो, कौन लोग

उपलब्ध हैं, कितने क्षमतावान हैं। उन्हें शिक्षाक्रम बनाने के लिए एक निर्धारित रकम दे। और निर्धारित समय में काम पूरा करवा लो। ... यह कुछ ऐसी बात है कि मुझे घर की दीवार बनवानी है और मैं मजदूरों की मंडी में जाता हूँ। कुछ लोग आते हैं और दीवार बनाकर चले जाते हैं। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि कहीं कोई सीखने की जगह है, ऐसे लोगों की कहीं कोई सीखने की जगह है जहाँ तैयार होकर ये लोग बाजार में उपलब्ध होंगे। वहाँ से जो जरूरत होगी, उस प्रकार का व्यक्ति लाकर काम करा लेंगे। मुझे लगता है कि शिक्षा में यह नहीं हो पायेगा।

यदि इन चीजों को देखते हैं तो ऐसी जगहों की जरूरत है, ऐसे संस्थानों की जरूरत है, जो सतत् रूप से शिक्षा को नर्चर करते हैं और इसमें पार्टनरशिप की जरूरत होती है। मैं व्यापक भागीदारी की जो बात कर रहा था, वह इसी संदर्भ में थी। मुझे लगता है इस पृष्ठभूमि में, इस जगह लोक जुम्बिश की बात आती है। इन दिनों जो मैंने पढ़ा है उसमें लोकजुम्बिश के बारे में कई सारी बातें कही गयी हैं। कई भ्रांति की भी बातें हैं जैसे यह कहा गया कि लोक जुम्बिश एक गैर सरकारी संस्था है। लोकजुम्बिश को गैर सरकारी संस्था मानकर लिखे कई लेख सामने आये। लोक जुम्बिश गैर सरकारी संस्था था ही नहीं। लोक जुम्बिश एक स्वायत्तशासी परिषद के रूप में काम करता करता रहा है। उसकी महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने इस व्यापक भागीदारी के लिए अवकाश का सृजन किया, उसके लिए जगह बनायी। इसमें बहुत सारे लोगों ने परस्पर इंटरक्ट करना शुरू किया। इसमें एक प्रकार का मंथन शुरू हुआ जिसका पेड़ागॉजिकल असर पड़ना शुरू हुआ और शिक्षा के प्रबंधन पर गहरा असर पड़ा।

गांव का आदमी जिसका बच्चा स्कूल जाता है, पहली बार इतने व्यापक स्तर पर सरकारी कार्यक्रम से जुड़ा। ऐसा पहली बार हुआ कि स्कूल में क्या क्या जरूरत है? और इसको कैसे पूरा किया जा सकता है? इसकी योजना में गांव के सामान्य व्यक्ति को शामिल किया गया। जब ये सारी चीजें चल रही थी तो इसका असर सिर्फ लोकजुम्बिश तक या राजस्थान तक सीमित नहीं था। कम से कम मुझे ऐसा लगता है। अन्य जो बड़े कार्यक्रम चल रहे हैं, जिनका सूत्रपात सरकार की तरफ से हुआ है, उन्होंने इस तरीके पर ध्यान देना शुरू किया था, इसको थोड़ी तवज्जो देनी शुरू की। हो सकता है जमीनी स्तर पर, क्षेत्र के स्तर पर वह इतना नहीं पहुंचा हो जितना लोकजुम्बिश में पहुंच पाया। ये भी संभव है कि लोक जुम्बिश में भी उतना नहीं पहुंचा हो जितना की लोकजुम्बिश का विजन था। लेकिन मुझे यह भी लगता है कि विजन में और वास्तविकता में हमेशा ही एक प्रकार का द्वैत रहता है क्योंकि विजन को हासिल करने के लिए सतत् कोशिश करते रहते हैं और वहां

पहुंचते हैं तब तक वो और विकसित हो जाता है। लेकिन उस दिशा में एक कदम था लोकजुम्बिश 'था' नहीं 'है' ऐसा कहना चाहिए ... इसमें मुझे कोई शक नहीं है।

पोखरण विस्फोट के बाद जो परिस्थितियां शुरू हुईं, शुरू में ऐसा लगा कि पैसे की कमी के कारण और सीडा के हाथ खींच लेने के कारण लोक जुम्बिश की हालत ठीक नहीं है। लेकिन धीरे धीरे मार्च-अप्रैल तक आते-आते यह बड़ा स्पष्ट लगने लगा कि इसमें बात इतनी सी ही नहीं है। शायद सरकार भी लोकजुम्बिश को उस रूप में, उस ढंग से चलाना नहीं चाहती है। इस वक्त खूब सारे इस प्रकार के वक्तव्य आये हैं, सरकार के जिम्मेदार लोगों की ओर से, जिनसे यह बात स्पष्ट रूप से लोगों तक पहुंची है कि सरकार लोक जुम्बिश को पसंद नहीं करती। उसके बाद काफी समय बीत गया। मैं इस पूरे इतिहास में नहीं जा रहा। लेकिन जो चिंता की बात है, वह ये है कि इस प्रकार का जो थोड़ा बहुत डी-ब्यूरोक्रेटाइजेशन की तरफ कदम बढ़ा था लोकजुम्बिश में, व्यापक जन सहभागिता के लिए, कार्यक्रम में अन्य लोगों की शिरकत के लिए जो स्थान बना था, अवसर सृजित हुआ था, वह अब खतरे में है।

यह एक मुद्दा है जो आज की बैठक के संदर्भ में है। लेकिन एक बार फिर से मैं शुरू में कही गयी बात दोहरा दूँ कि इस बैठक के उद्देश्यों के रूप में हम लोगों ने यह नहीं सोचा था कि हम लोग लोक जुम्बिश का मात्र यह विश्लेषण करेंगे कि इसमें यह हुआ, यह नहीं हुआ। यह एक मुद्दा हो सकता है और इस पर बात की जा सकती है। लोक जुम्बिश में गतिरोध का संदेश लोगों तक पहुंचा है और बहुत सारे लोग इस नजर से सोचते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि इस मुद्दे को रखते हुए हमें व्यापक रूप से विचार करना चाहिए। क्योंकि यह सच है, यदि ऐसा हुआ है तो काफी डरा देने वाली बात है। फिर इसका यह मतलब है कि सरकार की तरफ से स्वायत्तशासी परिषद के नाम पर जो कार्यक्रम चलाये जाते हैं, जो गैर सरकारी संगठन अलग से, अपने ढंग से काम करने की, लोगों की भागीदारी हासिल करने की जो भी कोशिश करते हैं वह सब राज्य सत्ता की दया पर निर्भर है। यह जब तक चलता है ठीक है अन्यथा जिस दिन सरकार चाहेगी, उसी दिन उसको रोका जा सकता है। उसमें किसी को कुछ लेना देना नहीं है। हां, पहले था, राज्यसत्ता चाहती थी इसलिए ऐसा चलता था, अब राज्यसत्ता नहीं चाहती है इसलिए नहीं चलेगा।

कहीं एक सवाल उठता है कि जो लोग अलग हटकर या दूसरी प्रकार से काम करने की कोशिश कर रहे हैं, उसका आधार क्या है? उसकी जड़ क्या है? उसमें दम कितना है? फिर एक सवाल उठता है कि हम लोग जो ये सारे काम कर रहे हैं - यहां बैठे अनेक

लोगों ने सशक्तिकरण और शिक्षा में खुलेपन पर अलग अलग जगहों पर लंबे समय तक जद्दोजहद की है - हम लोगों की इसमें क्या भूमिका है ? हम कहां पहुंचे ? ऐसी परिस्थिति में हम लोगों को क्या करना चाहिए ?

इस पृष्ठभूमि में, एक उद्देश्य आज की बैठक का यह हो सकता है, कि क्या ऐसे प्रयोग सदा ही राज्य सत्ता की दया पर निर्भर करेंगे ? क्या इनका अपना कोई ठोस वजूद बन सकता है ? जिसे राज्य सत्ता जब चाहे तब ध्वस्त न कर सके, हिला न सके ? क्या हम लोगों की इसमें कोई भूमिका है ? हम लोगों से मेरा मतलब है शिक्षा से जुड़े हुए लोग। बेशक लोकजुम्बिश से जुड़े हुए लोग भी हैं और कुछ जो हम यहां पर बैठे हैं तो क्या हम लोगों की इसमें कोई भूमिका है? क्या लोक जुम्बिश का जो सकारात्मक स्वरूप उभरा था, उसको बचाया जा सकता है ? यह भी बात की जा

सकती है कि क्या इस पर आंच है भी या नहीं ? लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है, बचाने की बात तो तब होती है जब उस पर आंच हो। ये बात भी की जा सकती है लेकिन कम से कम मेरे मन में सवाल यही है कि क्या उसको बचाया जा सकता है ?

इस संदर्भ में हम लोगों के उत्तर क्या हैं ? हम लोगों के कार्य की दिशा क्या होगी और क्या किसी प्रकार के कर्म के लिए इस शैक्षिक संवाद में हम किसी संकल्प की धारणा दे सकते हैं ? क्या हम किन्हीं सुविचारित निष्कर्षों पर पहुंच सकते हैं ? हम किस दिशा में बढ़ना चाहते हैं, इसके बारे में कोई सांझी समझ यहां पर बना सकते हैं ? और उस समझ को चरितार्थ करने के लिए किसी प्रकार के कर्म के बारे में कोई संकल्प इस बैठक से उभर सकता है क्या? यह सब एक्सप्लोर करना इस बैठक का उद्देश्य है । धन्यवाद !